International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. मीनाक्षी मीना

सह आचार्य समाजशास्त्र राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ (अलवर)

शोध सारांश

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था प्राचीन काल से सामाजिक संगठन का एक महत्वपूर्ण आधार रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया, किन्तु जाति का प्रभाव राजनीति में निरंतर बना रहा। भारतीय राजनीति में चुनाव, नेतृत्व, राजनीतिक दलों की रणनीतियाँ, मतदाता व्यवहार तथा सत्ता संरचना पर जाति का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। जाति ने जहाँ सामाजिक प्रतिनिधित्व और राजनीतिक जागरूकता को बढ़ावा दिया है, वहीं जातिवाद, सामाजिक विभाजन तथा वोट बैंक की राजनीति जैसी समस्याओं को भी जन्म दिया है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द – जाति, राजनीति, लोकतंत्र, वोट बैंक, सामाजिक न्याय, आरक्षण, जाति और राजनीति, परम्परागत शक्ति, आधुनिकीरण, जाति व्यवस्था,दबाव गुट, राजनीतिकरण, मतदान व्यवहार, जाति एवं प्रशासन, जाति की भूमिका।

प्रस्तावना

उद्देश्य –

1. जाति का राजनीति के सम्पूर्क सूत्र के बारे जानकारी प्रापत करनी।
2. भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
3. जाति का राजनीतिकरण किस प्रकार हो रहा के बारे में विस्तार से चर्चा करना।
4. भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का अध्ययन करना।
5. जाति आधारित राजनीति के सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करना।
6. चुनावी राजनीति में जातीय समीकरणों को समझना।
7. सामाजिक न्याय और आरक्षण नीति के प्रभावों का अध्ययन करना।
8. जाति और लोकतंत्र के संबंध का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना।

प्रस्तावना

भारत एक बहुजातीय, बहुभाषीय और बहुसांस्कृतिक देश है। यहाँ की सामाजिक संरचना में जाति का विशेष महत्व रहा है। भारतीय समाज में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, व्यवसाय, विवाह तथा सामाजिक संबंधों पर जाति का प्रभाव परंपरागत रूप से देखा जाता रहा है। स्वतंत्रता के बाद संविधान ने सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान किया, लेकिन राजनीति में जातीय पहचान आज भी एक महत्वपूर्ण कारक बनी हुई है। चुनावों में उम्मीदवारों का चयन, राजनीतिक दलों की रणनीतियाँ तथा मतदाताओं का व्यवहार जातीय आधार पर प्रभावित होता है। भारतीय लोकतंत्र में जाति एक सामाजिक शक्ति के रूप में कार्य करती है।

प्रो. घुरिये ने जाति व्यवस्था की छ. विशेषताएँ बतायी हैं, जो इस प्रकार है :

1. भारत मे जाति ऐसे समुदाय है जिसका अपना विकसित जीवन है और इसकी सदस्यता जन्म से निश्चित होती है।

2. भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति जानता है और जातियों के पद सोपान मे बाह्मण सबसे ऊपर माना जाता है।
3. जातियो के आधार पर खान–पान और सामाजिक आदान–प्रदान के प्रतिबन्ध लगे रहते है।
4. गाँवो तथा शहरों में जाति के आधार पर पृथकता की भावना बनी रहती है ।
5. कुछ जातियाँ कतिपय विशेष प्रकार के व्यवसायो को अपना पुश्तैनी अधिकार समझती हैं।
6. जातियों की परिधि में ही वैवाहिक आदान–प्रदान होता है और जातियाँ कई उप –जातियो में विभक्त होती है । उप–जातियो मे भी वैवाहिक परिसीमाएं हैं।

जाति का राजनीतिक रूप

रजनी कोठारी का दृष्टिकोण – प्रो. रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक ''कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स'' में भारतीय राजनीति मे जाति की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण किया है। उनका मत है कि अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या भारत मे जाति प्रथा खत्म हो रही है ? इस प्रश्न के पीछे यह धारणा है कि मानो जाति और राजनीति परस्पर विरोधी संस्थाएँ है। ज्यादा सही सवाल यह होगा कि जाति–प्रथा पर राजनीति का क्या प्रभाव पड़ रहा है और जाति–पाति वाले समाज में राजनीति क्या रूप ले रही है ? – जो लोग राजनीति मे जातिवाद की शिकायत करते हैं, वे न तो राजनीति के प्रकृत स्वरूप को ठीक समझ पाये है और न जाति के स्वरूप को। भारत की जनता जातियों के आधार पर संगठित है अतः न चाहते हुए भी राजनीति को जाति संस्था का उपयोग करना ही पडेगा। अतः राजनीति में जातिवाद का अर्थ जाति का राजनीतिकरण है। जाति को अपने दायरे में खींचकर राजनीति उसे अपने काम में लाने का प्रयत्न करती है। दूसरी और राजनीति द्वारा जाति या बिरादरी को देश की व्यवस्था में भाग लेने का मौका मिलता है। राजनीतिक नेता सत्ता प्राप्त करने के लिए जातीय संगठन का उपयोग करते हैं और जातिया के रूप मे उनको बना–बनाया संगठन मिल जाता है जिससे राजनीतिक संगठन में आसानी होती है।

जाति व्यवस्था और राजनीति मे अन्तः क्रिया के सन्दर्भ मे प्रो. रजनी कोठारी ने जाति प्रथा के तीन रूप प्रस्तुत किये है (1) लौकिक रूप (जेम ेमबनसंत ेचमबज), (2) एकीकरण का रूप (जेम पदजमहतंजपवद ेचमबज), तथा (3) चैतन्य रूप (जेम ेचमबज व िबवदेबपवनेदमे)।

1. जाति व्यवस्था का लौकिक रूप–रजनी कोठारी ने जाति व्यवस्था के लौकिक रूप को व्यापक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया । जाति व्यवस्था की कुछ बातों पर सबका ध्यान गया है जैसे जाति के अन्दर विवाह, छुआछूत और रीति–रिवाजों के द्वारा जाति की पृथक् इकाई को कायम रखने का प्रयत्न । लेकिन इस बात की ओर बहुत ही कम लोगो का ध्यान गया है कि जातियों मे आपसी प्रतिद्वन्द्विता एवं गुटबन्दी रहती है, प्रत्येक जाति प्रतिष्ठा और सत्ता की प्राप्ति के लिए संघर्षरत रहती है। उदाहरण के लिए, आजकल बिहार में ऊँची जातियों और पिछडा जातियों के बीच सत्ता प्राप्ति का अनवरत संघर्प चल रहा है और यही कारण है कि जनता शासन के दौरान दोनों ही मुख्यमन्त्री पिछडी और अनुसूचित जातियों से आये । जाति व्यवस्था के इस लौकिक पक्ष के दो रूप थे– एक शासकीय रूप यानि जाति की ओर गांव की पंचायत और चौधराहट । दूसरा रूप राजनीतिक था यानि जाति की आन्तरिक गुटबन्दी और अन्य जातिया से गठजोड और प्रतिद्वन्द्विता। इन. संगठनों का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता था कि स्थानीय नेताओं के समाज की केन्द्रस्य सत्ता से किस प्रकार के सम्बन्ध थे। धर्म, व्यवसाय और प्रदेश के आधार पर इन जातियों की स्थिति बनती और बिगडती थी। पहले इन जातियों का सम्बन्ध, जाति या गांव की पंचायत और राजा या जमींदार से रहता था। अब जातीय पंचायतों के स्थान पर विधानसभाएं और संसद हैं तथा राजा के स्थान पर राष्ट्रीय सरकार है। रजनी कोठारी का यह भी विचार है कि देश की राजनीति पर किसी एक जाति का प्राधान्य नहीं हो सका क्योकि कुछ स्थानो पर ब्राह्मणों का वर्चस्व था तो कुछ प्रदेशों मे जैसे गुजरात और मारवाड़ मे जैन, वैष्णव जैसे सम्प्रदायों के हाथ मे आर्थिक शक्ति थी।

2. जाति व्यवस्था का एकीकरण रूप–जाति का दूसरा रूप एकीकरण का है अर्थात् व्यक्ति को समाज से बांधने का है। जाति प्रथा जन्म के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का समाज मे स्थान नियत कर देती है। जाति के आधार पर ही उस

व्यक्ति का व्यवसाय और आर्थिक भूमिका निश्चित हो जाती है । चाहे कितना भी बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, उसका अपने समाज मे लगाव पैदा हो जाता है, जाति के प्रति उसकी निष्ठा बढ़ने लगती है। यही निष्ठा आगे चलकर बड़ी निष्ठायों अर्थात लोकतन्त्र और राजनीतिक व्यवस्था के प्रति भी विकसित हो सकती है। इस प्रकार जातियाँ जोड़ने वाली कटियाँ बन जाती है । लोकतन्त्र के अन्दर विभिन्न समूहों मे शक्ति के लिए प्रतिद्वन्द्विता होती है और विभिन्न जातियों ने आपस में मिल–जुलकर गठजोड बनाने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है ताकि वे सत्ता का लाभ प्राप्त कर सकें।

3. जाति व्यवस्था का चौतन्य रूप–जाति प्रथा का तीसरा रूप चेतना बोध है । कुछ जातियां अपने को उच्च समझती हैं और इस कारण समाज मे उनकी विशेष प्रतिष्ठा होती है । इस कारण कुछ निम्न समझी जाने वाली जातियाँ भी अपने को उनके साथ जोड़ने की चेष्टा करती है । क्षत्रिय वर्ण के साथ जो प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है, उसके कारण देश के विभिन्न भागों मे अनेक जातियों ने इस वर्ण का दावा किया है। कुछ जातियों में इसी प्रकार ब्राह्मण पद का भी दावा किया है। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन के परिणामस्वरूप जाति विशेष की स्थिति भी बदलती है । सामाजिक व्यवहार में अलग–अलग स्तर पर अलग–अलग रूप धारण करने के कारण जाति व्यवस्था में लोच और परिवर्तनशीलता आ जाती है। इसके लिए चार मार्ग अपनाये जाते है । प्रथम, संस्कृतिकरण का तरीका है। संस्कृतिकरण मे छोटी जातियाँ सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों के रीति–रिवाजों की नकल करने लगती है। इसे ब्राह्मणीकरण भी कहा जाता है । द्वितीय, लौकिकीकरण या अब्राह्मणीकरण का तरीका है । आर्थिक उन्नति, राजनीतिक एकता और बुद्धिवाद की सार्वजनिक प्रवृत्तियों के प्रभाव से अक्सर अब्राह्मण जातियों ब्राह्मणों की नकल करने की प्रवृत्ति को छोड़ देती है और अन्य अत्राह्मण जातियों से मिलकर राजनीतिक व सामाजिक अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करती है । तृतीय, महापुरुषों से सम्बन्ध जोड़ने का तरीका है। कभी–कभी कतिपय जातियां अपनी उच्चता सिद्ध करने के लिए अपना सम्बन्ध पौराणिक पुरुषों से जोड़ने का प्रयत्न करती है। जैसे गुजरात के पाटीदार, बंगाल के महाष्यि और राजस्थान के जाट आदि। चतुर्थ, आधुनिक राजनीति में भी भागीदारी का तरीका है। कुछ जातियाँ सीधे ही आधुनिक राजनीति में भाग लेने लगी और इस प्रकार उन्होंने समाज में भी उच्च स्थिति प्राप्त की । आन्ध्र प्रदेश और बिहार इसके उदाहरण है।

प्रो. रजनी कोठारी ने जाति के राजनीतिकरण की चर्चा करते हुए कहा है कि ''इससे पुराना समाज नयी राजनीतिक व्यवस्था के करीब आया है। इस प्रक्रिया को उन्होंने तीन चरणों में बाँटा है –

1ण **शक्ति और प्रभाव की प्रतिस्पर्धा**–ऊँची जातियों तक सीमित रही–भारत का पुराना समाज जब नयी व्यवस्था के सम्पर्क में आने लगा तो सबसे पहले शक्ति और प्रभाव की स्पर्धा समाज की प्रतिष्ठित और जमी हुई जातियों तक सीमित रही। जिन जातियों ने उच्च शिक्षा प्राप्त करके आधुनिक बनने का प्रयत्न किया, वे प्रतिष्ठित जातियों के समक्ष आने लगी। इन जातियों ने अधिकार और पद प्राप्त करने के लिए अपना राजनीतिक संगठन बनाया जिससे दो ऊंची जातियों मे प्रतिस्पर्धा और प्रतिद्वन्द्विता बढने लगी। मद्रास और महाराष्ट्र में ब्राह्मण–अब्राह्मण राजस्थान में राजपूत जाट, गुजरात में बनिया–ब्राह्मण–पाटीदार, आन्ध्र प्रदेश मे कम्मा रेड्डी और केरल मे इजवा–नायर द्वन्द्व इसके उदाहरण है।

2ण **जाति के अन्दर की प्रतिस्पर्धी गुटबन्दी**–इस चरण में भिन्न–भिन्न जातियों की प्रति स्पर्धा के साथ–साथ जाति के अन्दर भी प्रतिस्पर्धी गुट बन जाते हैं। प्रतिद्वन्द्वी नेताओं के पीछे गुट बन जाते हैं । इन गुटों में विभिन्न जातियों के लोग होते हैं। अपना गुट मजबूत करने के लिए उन जातियों की भी सहायता ली जाती है, जो अब तक दायरे से बाहर थी। चुनाव मे समर्थन प्राप्त करने के लिए नीची जातियों के प्रमुख लोगों को छोटे राजनीतिक पद और लाभ मे कुछ । हिस्सा देकर प्रतिस्पर्धी नेता अपना गुट मजबूत करने का प्रयत्न करते हैं। जहाँ इस प्रकार मुखियों को इनाम और पद देकर इन जातियों का समर्थन प्राप्त करना सम्भव नहीं हुआ, वहाँ विभिन्न जातियों और उपजातियों मे आपसी प्रतिस्पर्दा पैदा करके उनका संगठन बनाने की और उन संगठनों के मध्यस्थ या विचवइयों द्वारा समझौता करने की कोशिश की गयी । इस चरण में पुराने ब्राह्मण और कायस्थ आदि प्रशासनिक जातियों के नेताओं के बजाय व्यवसायी और कृपक जातियों के नेताओं और कार्यकर्तायों की संख्या बढी । ये नेता सौदा पटाने मे कुशल थे, ज्यादा व्यावहारिक थे और अपने वर्ग और जाति के लोगों का नेतृत्व कर सकते थे।

3ण् **जाति के बन्धन ढीले पड़ना और राजनीति को व्यापकता मिलना**–रजनी कोठारी के अनुसार तीसरे चरण में एक ओर राजनीतिक मूल्यों की प्रधानता हुई और जाति–पाति से लगाव कम हुआ, वहीं दूसरी ओर शिक्षा, नये शिल्प और शहरीकरण के कारण समाज में परिवर्तन आया । भौतिक उन्नति की नयी धारणाओ का जोर बढा । पुराने पारिवारिक वन्धन टूटने लगे और लोग काम–धन्धे के लिए शहरों में जाकर बसने लगे। जाति की भावना ढीली पड़ने लगी और सामाजिक व्यवहार अपनी जाति तक सीमित न रहा । राजनीति में भी व्यापकता आयी। नयी शिक्षा और नये सामाजिक व्यवहार से उत्पन्न होने वाली नयी प्रवृत्तियाँ फैलने लगी। राजनीतिक संस्थाओ का ढाँचा व्यापक होने लगा और जाति की भावना को नया रूप मिलने लगा। राजनीतिक प्रवृत्तियों ने नयी निष्ठाओं को जन्म दिया, जो पूरानी निष्ठाओं को काटती हैं। जाति अब राजनीतिक समर्थन या शक्ति का एकमात्र आधार नहीं रही, यद्यपि राजनीति मे इसका अधिकाधिक उपयोग किया जा रहा है।

जाति और राजनीति में अन्तःक्रिया – सैद्धान्तिक आधार

भारत मे जाति और राजनीति मे किस प्रकार का सम्बन्ध है ? इस सम्बन्ध मे चार प्रकार से विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं –

सर्वप्रथम, यह कहा जाता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था का संगठन जाति की संरचना के आधार पर हुआ है और राजनीति केवत सामाजिक सम्वन्धों की अभिव्यक्ति मात्र है। सामाजिक संगठन राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित करता है।

द्वितीय, राजनीति के प्रभाव के फलस्वरूप जाति नया रूप धारण कर रही है। लोक तान्त्रिक राजनीति के अन्तर्गत राजनीति की प्रक्रिया प्रचलित जातीय संरचनाओं को इस प्रकार प्रयोग मे लाती है जिससे सम्बद्ध पक्ष अपने लिए समर्थन जुटा सके तथा अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना सकें । जिस समाज में जाति को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संगठन माना जाता है उसमे यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि राजनीति इस संगठन के माध्यम से अपने आपको संगठित करने का प्रयास करें। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जिसे हम राजनीति मे जातिवाद के नाम से पुकारते हैं वह वास्तव में जाति का राजनीतिकरण है।

तृतीय, भारत मे राजनीति ''जाति'' के इर्द–गिर्द घूमती है। जाति प्रमुखतम राजनीतिक दल है । यदि मनुष्य राजनीति की दुनिया मे ऊँचा उठना चाहता है तो उसे अपने साथ अपनी जाति को लेकर चलना होगा। भारत में राजनीतिज्ञ जातीय समुदायों को इसलिए संगठित करते है ताकि उनके समर्थन मे उन्हें सत्ता तक पहुँचने में सहायता मिल सके।

चतुर्थ, जातियां संगठित होकर प्रत्यक्ष रूप से राजनीति मे भाग लेती है और इस प्रकार जातिगत भारतीय समाज मे जातियाँ ही ''राजनीतिक शक्तिया'' बन गयी हैं।

जाति के राजनीतिकरण की विशेषताएं –

भारतीय राजनीति मे जाति की भूमिका की उभरती विशषताएँ निम्नवत् हैं –

प्रथम, जाति व्यक्ति को बांधने वाली कड़ी है । जातीय संघों और जातीय पंचायतों ने जातिगत राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओं को बढ़ाया है। जाति–पाँति को समाप्त करने वाले आन्दोलन अन्ततोगत्वा नयी जातियों के रूप में मुखरित हुए जैसे लिंगायत, कबीरपन्थी और सिक्ख आन्दोलन स्वयं नयी जातियां बन गये।

द्वितीय, शिक्षा, शहरीकरण, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण से जातियां समाप्त नहीं हुई अपितु उनमें एकीकरण की प्रवृत्ति को बल मिला और उनकी राजनीतिक भूमिका मे वृद्धि

तृतीय, राजनीति में प्रधान जाति की भूमिका का विश्लेपण किया जा सकता है । प्रधान जाति न केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से ही शक्तिशाली होती है, बल्कि संख्या में भी गांव या इलाके मे ज्यादा होती है। प्रधान जाति अपने सख्या बल के आधार पर गाँव और क्षेत्र की स्थानीय सस्थाओं जैसे पंचायतों की राजनीति में सक्रिय होती है । यदि किसी राज्य विशेष मे किसी जाति की प्रधानता होती है तो राज्य राजनीति मे जाति एक प्रभावक तत्त्व बन जाती है । हरियाणा की राजनीति के बारे में टॉ सुनाप काश्यप ने लिखा है– ''हरियाणा में जाति और वर्ग की भावना को

अपेक्षाकृत अधिक बल मिला है तथा हरियाणा के जन जीवन मे सदा ही 'जाति' राजनीतिक दल की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण रही है। गुडगाँव और महेन्द्रगढ क्षेत्रों के अहीर, अहीर उम्मीदवार को ही मत देना चाहेगा अन्य किसी को नहीं यही बात राज्य के अन्य भागों के अन्य जाति के समूहों के बारे में लागू होती है । चुनावो के समय यहाँ अक्सर एक पुरजोर नारा सुनायी पडता है–**जाट की बेटी जाट को, जाट का वोट जाट को।** आश्चर्य की बात यह है कि जाति की यह छूत हिन्दुओ तक ही सीमित नही, मुसलमान भी उनकी गिरफ्त से नही बच सके।

चतुर्थ, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही जातिगत समुदायों का झुकाव राजनीति की ओर हो गया था जवकि ब्रिटिश शासन ने भारत में एक मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था की नींव डाली थी। सबसे पहले इसका ध्यान जनगणना कार्यालय की ओर गया जहाँ जातीय समुदायों ने सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्ति के ध्येय से अपने संगठन का नामकरण कराना आवश्यक समझा। बाद मे अपनी जाति के लोगों के हितों को संरक्षण के लिए जातीय संघों ने प्रस्ताव पारित किये और शासन को अपनी मांगों के लिए प्रभावित करना प्रारम्भ किया। यहाँ तक कि कुछ जातियों ने शैक्षणिक सुविधा, शिक्षण संस्थायो में जातिगत आरक्षण और सरकारी नौकरियों मे आरक्षण की मॉग की। मद्रास की वेनियर (टमददपलंत) जाति के नेता पदायची (च्कंलंबीप) ने सी. राज गोपालचारी के मन्त्रिमण्डल में शामिल होने से इंकार कर दिया क्योंकि उन्होंने उनकी जातीय मांगों को मानने से इंकार कर दिया था। बाद में वे कामराज मन्त्रिमण्डल में शामिल हो गये क्योंकि उन्होंने वेनियरों की मांगें स्वीकार कर ली थी।

पंचम, निर्वाचनों के दिनों में जातिगत समुदाय प्रस्ताव पारित करके राजनीतिक नेताओं और दलों को अपने जातिगत समर्थन की घोषणा करके अपने हितों को मुखरित करते हैं।

षष्ठ, जाति की भूमिका राष्ट्रीय स्तर की राजनीति पर उतनी नहीं है जितनी स्थानीय और राज्य राजनीति पर है।

सप्तम, जाति और राजनीति के सम्बन्ध स्थैतिक न होकर गतिशील है।

जाति के राजनीतिकरण का विवेचन

जातिवाद का एक पक्ष यह है कि यदि कुछ जातियाँ या जाति के लोग मिलकर कोई रचनात्मक कार्य जैसे स्कूल या कॉलेज खोलना, अस्पताल, धर्मशालाएँ, मन्दिर, गुरुद्वारे आदि वन वाना, निर्धनों को आर्थिक सहायता देना आदि करते हैं तो उससे न तो किसी को हैरानी या परे शानी होगी और न कोई विद्वेप की भावना ही फैलती है। किन्तु जब कुछ जातियाँ या जाति के लोग मिलकर अन्य जाति को परेशान अथवा संत्रस्त करते हैं तो स्थिति भयावह अवश्य बन जाती है। आजकल प्राय. यही हो रहा है। अच्छे प्रतिभाशाली लोग केवल इसी आधार पर उपेक्षित रहते हैं कि वे किसी जाति विशेष के नहीं होते। जातियो के नाम से चलने वाली सस्था मे से बहुत ही कम ऐसी होती है जो पक्षपात शून्य होती है, बाकी सभी मे यह विप इस प्रकार घोला जाता है कि अच्छी प्रतिभाओं का विकास रुक जाता है। जातिवाद अथवा भारत मे जातियों का होना यदि वास्तव में एक सामाजिक बुराई है तो उसे अभी दूर क्यो नहीं किया गया ? छुआछूत मिटाने के लिए यदि कानून बन सकता है तो जाति प्रथा को समाप्त करने के लिए अभी तक कानून क्यों नहीं बना? यह सहज ही शंका का विषय बन जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे राजनीतिज्ञ ऊपर से जाति तोडो सम्मेलन करते है किन्तु अन्तरंग से जातीयता को बढावा देते है। जातिवाद के कारण अनेक ऐसे सघ वन गये है जिनमे काफी पिछड़े वर्ग के लोग शामिल हैं । शोषित संघ तो अनुसूचित जातियों अथवा अनुसूचित आदिम जातियों का एक संघ है ही। इधर एक नाम दलित पैथर भी सुनाई पड़ने लगा है। दलित का अर्थ है रौदा, कुचला अथवा संत्रस्त । जवकि पैथर अंग्रेजी का शब्द है जो चीता अथवा तेदुआ के लिए प्रयुक्त होता है। यह संगठन उग्रवादी अनुसूचित जातियो व आदिवासियो का मगठन है जो मूल रूप से जातीय आधार पर संगठित किया गया है। इसी प्रकार जाटों, गूजरो, अहीरो, वैश्यों आदि के भी अनेक संगठन हैं जिनका मुख्य आधार जाति ही है । ब्राह्मणों के कई वर्ग है । कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल, दक्षिणात्य आदि । इनकी भी अनेक सभाएँ व संगठन है जो भारतीय व प्रादेशिक आधार पर बनाये गये है–– जैसे अखिल भारतीय कान्य कुब्ज सभा, अखिल भारतीय ब्राह्मण सभा आदि । इन सभाओं का मूल ध्येय जातीय भावनाओं को उकसाना है । जातीय संगठन और जातीय नेता राजनीतिक दलों और राजनीतिज्ञों से सांठ–गांठ करके

जाति का राजनीतिकरण करने मे लगे हुए है। विहार और उत्तर प्रदेश मे आये दिन जातीय झगडों, तनावों और संघों मे जाति और राजनीति की अन्तःक्रिया ही दिखायी देती है।

भारतीय राजनीति में 'जाति' की भूमिका

जयप्रकाश नारायण ने एक बार कहा था कि ''जाति भारत मे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण दल है।'' हेरल्ड गोल्ड के शब्दों में, ''राजनीति का आधार होने के बजाय जाति उसको प्रभावित करने वाला एक तत्त्व है।''

जाति–व्यवस्था भारतीय समाज का परम्परागत पक्ष है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात संविधान और गजनीतिक संस्थाओं के निर्माण से आधुनिक प्रभावों ने भारतीय समाज मे धीरे–धीरे प्रवेश करना आरम्भ कर दिया । आधुनिक प्रभावों के फलस्वरूप वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन प्रारम्भ हुए और जातिगत सस्थाएँ यकायक महत्त्वपूर्ण बन गयी क्योंकि उनके पास भारी संख्या मे मत थे और लोकतन्त्र में सत्ता प्राप्ति हेतु इन मतों का मूल्य था । जिन्हे सत्ता की आकांक्षा थी उन्हं सामान्य जनता के पास पहुँचने के लिए सम्पर्क सूत्र की भी आवश्यकता थी । सामान्य जनता को अपने पक्ष में मिलाने के लिए यह भी जरूरी था कि उनसे उस भाषा में बात की जाय जो उनकी समझ में आ सके। जाति–व्यवस्था इस बात को प्रकट करती थी। इस पृष्ठभूमि मे जाति की भूमिका राजनीति में अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होती गयी। भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का अध्ययन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है ।

1ण **निर्णय प्रक्रिया में जाति की प्रभावक भूमिका** –भारत मे जातियाँ संगठित होकर राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णय की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ, संविधान में अनुसूचित जातियों और जन जातियों के लिए आरक्षण के प्रावधान रखे गये हैं जिनके कारण ये जातियाँ सगठित होकर सरकार पर दवाव डालती है कि इन सुविधाओं को और अधिक वर्षों के लिए अर्थात् जनवरी 2000 तक के लिए बढा दिया जाय । अन्य जातियाँ चाहती है कि आरक्षण समाप्त किया जाय अथवा इसका आधार सामाजिक–आर्थिक स्थिति हो अथवा उन्हे आरक्षित सूची में शामिल किया जाये ताकि वे इसके लाभ से वंजित न रह जाये।

2ण **राजनीतिक दलों में जातिगत आधार पर निर्णय** –भारत मे सभी राजनीतिक दल अपने प्रत्याशियों का चयन करते समय जातिगत आधार पर निर्णय लेते हैं। प्रत्येक दल किसी भी चुनाव क्षेत्र में प्रत्याशी मनोनीत करते समय जातिगत गणित का अवश्य विश्लेषण करते हैं। 1962 मे गुजरात के चुनाव मे स्वतन्त्र पार्टी की सफलता का राज उसका क्षत्रिय जाति के समर्थन में छिपा हुआ था। हरिजन–मुसलमान–ब्राह्मण शक्तिपुंज बनाकर ही 1971 का आम चुनाव कांग्रेस ने जीता था। 1977 में जनता पार्टी की विजय का कारण उसे मुसलमानों और हरिजनों के साथ उच्च जातियों का प्राप्त समर्थन था। जनवरी 1980 के सप्तम लोकसभा चुनावों में कांग्रेस (इन्दिरा) की विजय का कारण है कि श्रीमती गांधी हरिजनों, ब्राह्मणों और मुसलमानों का जातीय समर्थन जुटाने मे सफल हो गयी । नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों ने उत्तर प्रदेश और बिहार में जनता दल की अपूर्व विजय का एक कारण जाट–राजपूत समर्थन है। उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी का उदय और आधार कतिपय पिछड़ी जातियों के समर्थन पर निर्भर हैं। काग्रेस सहित सभी राजनीतक दलों में जातीय आधार पर अनेक गुट पाये जाते हैं जिनमे प्रतिस्पर्द्धा की भावना विद्यमान रहती है।

3ण **जातिगत आधार पर मतदान व्यवहार** – भारत में चुनाव अभियान मे जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है और प्रत्याशी जिस नर्वाचन क्षेत्र में चुनाव लड़ रहा है उस निर्वाचन क्षेत्र मे जातिवाद की भावना को प्रायः उकसाया जाता है ताकि सम्बन्धित प्रत्याशी की जाति के मतदाताओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया जा सके। जनवरी 1980 के चुनावों में उत्तर प्रदेश और कुछ बिहार के हिस्सों गे लोकदत की सफलता पिछड़ी जातियों की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं का प्रतीक है। उनर प्रदेश के चुनावों में चरण सिंह की सफलता सदैव ही जाट जाति के मतों की एकजुटता पर निर्भर रही है । केरल के चुनावों में साम्यवादी और मार्क्सवादी दलों ने भी वोट जुटाने के लिए सदैव जाति का सहारा लिया है। दृ

4ण **मन्त्रिमण्डलों के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व** –राजनीतिक जीवन में जातीयता का सिद्धान्त इतना गहरा धंस गया है कि राज्यों के मन्त्रिमण्डल मे प्रत्येक प्रमुख जाति का मन्त्री होना चाहिए। यह मिद्धान्त प्रान्तों की राजधानियों

से ग्राम पंचायतों तक स्वीकृत हो गया कि प्रत्येक स्तर पर प्रधान जाति को प्रतिनिधित्व मिलना ही चाहिए। यहाँ तक कि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे भी हरिजनों, जनजातियों, सिक्खों, मुसलमानों, ब्राह्मणों, जाटो, राजपूतों और कायस्थों को किसी न किसी रूप में स्थान अवश्य दिया जाता है।

5ण **जातिगत दवाव समूह** – **मेयर** के अनुसार, जातीय संगठन राजनीतिक महत्त्व के दवाव समूह के रूप मे प्रवत्त है। जातिगत दबाव समूह अपने न्यस्त स्वार्थों एवं हितों की पूर्ति के लिए नीति–निर्माताओं को जिस ढंग से प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं उससे तो उनकी तुलना यूरोप और अमरीका में पाये जाने वाले ऐच्छिक समुदायों में की जा सकती है ।। अनेक जातीय संगठन और समुदाय जैसे तमिलनाडु में नाडार जाति संघ, गुजरात मे क्षत्रिय महासभा, बिहार में कायस्थ सभा आदि राजनीतिक मामलों मे रुचि लेने लगते हैं और अपने–अपने संगठित दल के आधार पर राजनीतिक सौदबवाजी भी करते हैं। यद्यपि देश की सभी प्रमुग्व जातियों को इस प्रकार पूर्णतया संगठित नहीं किया जा सका है। मगर जो जातियाँ इम प्रकार संगठित नहीं हो सकी, वे राजनीतिक सौदेबाजी मे सफल नहीं रही और उनके सदस्यों को अपनी आवाज उठाने के लिए उपद्रव और तोड–फोड का सहारा लेना पड़ा।

6ण **जाति एवं प्रशासन** –लोकसभा और विधानसभाओं के लिए जातिगत आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है केन्द्र एवं राज्यों की सरकारी नौकरियों एव पदोन्नति के लिए जातिगत आरक्षण का प्रावधान है। मेडिकल एव इन्जीनिरिंग कॉलेजों में विद्यार्थी की भर्ती हेतु आरक्षण के प्रावधान मौजूद हैं। चरणसिंह सरकार ने तो अल्पकाल में एक अध्यादेश के माध्यम से पिछड़ी जातियों के लिए केन्द्रीय सरकार की सेवा में आरक्षण व्यवस्था घोषित करने की मंशा प्रकट की और इस सम्बन्ध मे सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को भी ताक मे रख दिया । यदि यह अध्यादेश लागू हो जाता तो मध्यम जातियों जैसे अहीर, यादव, कुर्मी आदि को भी आरक्षण के अवसर मिल जाते। ऐसा भी माना जाता है कि भारत में स्थानीय स्तर के प्रशासनिक अधिकारी निर्णय लेते समय अथवा निर्णयों के क्रियान्वयन मे प्रधान और प्रतिष्ठित अथवा संगठित जातियों के नेताओं से प्रभावित हो जाते हैं।

7ण **राज्य राजनीति मे जाति** – **माईकेल ब्रेचर** के अनुसार अखिल भारतीय राजनीति की अपेक्षा राज्य स्तर की राजनीति पर जातिवाद का प्रभाव अधिक है । यद्यपि किसी भी राज्य की राजनीति जातिगत प्रभावों मे अछूती नहीं रही है तथापि बिहार, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा, राजस्थान और महाराष्ट्र राज्यों की राजनीति का अध्ययन तो बिना जातिगत गणित के विश्लषपण के कर ही नहीं सकते। बिहार की रजनीति मे राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ और जनजाति प्रमुख प्रतिस्पर्द्धी जातियां है । पृथक् झारखण्ड राज्य की माँग वस्तुत एक जातीय मांग ही रही है। केरल में साम्यवादियों की मफलता का राज यही है कि उन्होंने इजमाहा जाति को अपने पीछे संगठित कर लिया। आन्ध्र प्रदेश की राजनीति काम्मा और रइदी जातियों के सघर्ष की कहानी है। काम्माओ ने साम्यवादी दल का समर्थन किया तो रेड्डी जाति ने कांग्रेस दल का। महाराष्ट्र की राजनीति में मराठों, ब्राह्मणों और महरों में प्रतिस्पर्धा रही है। गुजरात की राजनीति मे दो ही जातियाँ प्रभावी हैं–पाटीदार और क्षत्रिय। केरल की राजनीति अपने तीन समुदायों के इर्द–गिर्द घूमती रही है–हिन्दू, क्रिश्चियन और मुमलमान । केरल की गजनीति मे अन्तिम दो प्रमुख राजनीतिक शक्तियों के रूप मे सक्रिय है । कहने को तो वहाँ सभी प्रकार के राजनीतिक दल है, किन्तु उन्हे ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पता चलेगा कि वे अब जातीय संगठन है। मुस्लिम लीग मुमलमानों की है, दोनों केरल काग्रेस के अधिसंख्य सदस्य ईमाई है । रा प्रा. मी. नायर लोगों की संस्था है । कांग्रेस (इ) और दोनों साम्यवादी दलों में एजवा जाति के अलावा हिन्दुओं के कुछ प्रमुख वर्गों का प्रभाव देखा जा सकता है । राजस्थान की राजनीति में जाट–राजपूत जातियों की प्रतिस्पर्धा प्रमुख रही है। संक्षेप में राज्यों की राजनीति मे जाति का प्रभाव इतना अधिक प्रतीत हो रहा है कि टिंकर जैसे विद्वानो ने राज्यों की राजनीति को जातियों की राजनीति की संज्ञा दे डाली है।

जाति की भमिका : वरदान या अभिशाप

भारतीय राजनीति मे जाति की भूमिका का मूल्यांकन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। कई लोग जाति को राजनीति का केन्सर मानते हैं । जाति प्रथा को राष्ट्रीय एकता के मार्ग मे बाधक माना जाता है क्योंकि इससे व्यक्तियों में पृथकतावाद की भावना जाग्रत होती है। राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा अपने जातिगत हितों को अधिक महत्त्व देने लगते हैं। जाति निष्ठायों का सृजन कर यह प्रथा लोकतन्त्र के विकास मार्ग को अवरुद्ध कर देती है। डी. आर. गाडगिल के अनुसार, क्षेत्रीय दबावों से कहीं ज्यादा खतरनाक बात यह है कि वर्तमान काल मे जाति व्यक्तियों के एकता के सूत्र में बांधने में बाधक सिद्ध हई। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास क स्पष्ट मत है कि परम्परावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह प्रभावित किया है कि ये राजनीतिक संस्थाएँ अपने मूलरूप में कार्य करने में समय नहीं रही है।

दूमरी तरफ अमरीकी लेखको **रूडाल्फ एण्ड रूडाल्फ** का मत है कि जाति व्यवस्था ने जातियों के राजनीतिकरण मे सहयोग देकर परम्परावादी व्यवस्था को आधुनिकता में ढालने के सांचे का कार्य किया है। वे लिखते हैं, अपने परिवर्तित रूप में जाति व्यवस्था ने भारत में कृषक समाज में प्रतिनिधिक लोकतन्त्र की सफलता तथा भारतीयों की आपसी दूरी कम करके, उन्हें अधिक समान बनाकर समानता के विकास में सहायता दी है।

निष्कर्ष

भारतीय राजनीति में जाति एक महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक तत्व है। लोकतंत्र के विकास के साथ जाति की भूमिका भी परिवर्तित हुई है। जाति ने जहाँ पिछड़े वर्गों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय दिलाने में सहायता की है, वहीं जातिवाद और वोट बैंक राजनीति जैसी समस्याओं को भी जन्म दिया है। भारतीय लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि राजनीति जातीय हितों से ऊपर उठकर विकास, समानता और राष्ट्रीय एकता पर आधारित हो। शिक्षा, सामाजिक चेतना और संवैधानिक मूल्यों के माध्यम से ही जाति आधारित राजनीति के नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सकता है।

संक्षेप में, चाहे जाति आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक न हो तथापि राजनीति मे जाति का हस्तक्षेप लोकतन्त्र की धारणा के प्रतिकूल है। जातिवाद देश, समाज और राजनीति के लिए बाधक है। विविधता की सीमाएँ होती हैं। इस देश में इतनी जातियाँ, उपजातियाँ तथा सह जातियाँ पैदा हो गयी है कि वे एक–दूमरे से पृथक् रहने में ही अपने–अपने अस्तित्व की रक्षा समझती हैं । यह पृथक्तावादी दृष्टि राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यधिक घातक है ।

संदर्भ सूची

1. Rajni Kothari : Caste in Indian Politics (Delhi, 1970),
2. Granvile Austin The Indian Consintution-Cornerstone of a Nation (Oxford, 1966),
3. Michacl Brecher : Succession in India (London).
4. J.C. Johari, Reficcrion on Indian Politics (New Delhi 1974).
5. Babu Lal Fadia : Pressure Groups in Indian Politics (Radiant Publishers,New Delhi,1980)
6. डॉ. सुभाप काश्यप, दल–बदल और राज्यों की राजनीति (मराठ, 1970)
7. लायड आई. रुडाल्फ एण्ड एस. हावर रूडाल्फ, दि मॉडर्निटी ऑफ ट्रेडीशन (ओरियण्ट लाग मैन 1969)
8. योगेन्द्र यादव, कायापलट की कहानी : नया प्रयोग, नयी संभावनाएँ नये और संकलित, अभय कुमार दुबे (सं.), लोकतंत्र के सात अध्याय, वाणी प्रकाशन ही एस.डी.एस., नई दिल्ली , 2002,
9. घनश्याम शाह, इंट्रोडक्शन, संकलित, घनश्याम शाह (सं.), कास्ट एंड डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स इन इंडिया, परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली, 2002.
10. जी.एस. घूर्ये, कास्ट, क्लास एंड आक्यूपेशन, पॉपुलर बुक डिपो. बॉम्बे, 1969,
11. एडमंड आर.लीच, इंट्रोडक्शन : व्हाट शुड बी मीन बाई कास्ट, संकलित, ई. आर.लीच (सं.), ऑस्पेक्टस ऑफ कास्ट इन साउथ इंडिया, साइलोन एंड वेस्ट पाकिस्तान, कैम्ब्रिज, इंग्लैण्ड, 1960,
12. मैक्स वेबर, क्लास स्टेट्स एंड पार्टी, संकलित, दीपांकर गुप्ता (सं.), सोशल स्ट्रेटिफिकेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1991,

13. लुईस ड्युमोण्ट, हाइरारकी, स्टेट्स एंड पावर : द कास्ट सिस्टम एंड इट्स इम्पलिकेशंस, संकलित, दीपांकर गुप्ता (सं), सोशल स्ट्रेटिफिकेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1991,
14. एम.एन. श्रीनिवास, आधुनिक भारत में समाज परिवर्तन, नई दिल्ली, 1982,
15. दीपांकर गुप्ता, कास्ट, इन्फ्रास्ट्रक्चर एंड सुपरस्ट्रक्चर : ए क्रिटीक, इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 19 दिसम्बर, 1981,
16. नेसफील्ड के सिद्धान्त के लिए देखें, रोमा मित्रा, कास्ट पोलराइजेशन एंड पॉलिटिक्स, सिंडिकेट पब्लिकेशन, पटना, 1992,
17. लुईस डयुमोण्ट के विस्तार से समझ के लिए देखें, लुईस ड्युमोण्ट, होमो हायरारकिकस : द कास्ट सिस्टम एंड इट्स इम्पलिकेशन्स, विडेनफील्ड एंड निकोल्सन, लंदन, 1970.
18. रोमा मित्रा, कास्ट पोलराइजेशन एंड पॉलिटिक्स,
19. सन्दरलाल सागर, हिंदू कल्चर एंड कास्ट सिस्टम इन इंडिया. उप्पल बुक स्टोर, दिल्ली, 1975,
20. हेमंत कुमार भट्ट, न्यू डायमेंशन्स ऑफ कास्ट पॉलिटिक्स इन 1990 (अप्रकाशित एम.फिल्म. लघु शोध प्रबंध), डिपार्टमेण्ट ऑफ पॉलिटिकल साइंस, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2003, दिल्ली,